सामाजिक परिवर्तन में धर्म की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ0 मिथिलेश कुमार*

समाजशास्त्र के क्षेत्र में परिवर्तन की चर्चा अगस्त कौंत, कार्ल मार्क्स तथा हरबर्ट स्पेन्सर के लेखें में हमें देखने को मिलता है। सामाजिक परिवर्तन को स्पष्ट करने में मकीवर एवं पेज, डेबीस, ऐन्थनी ग्रिडेन्स, जिटलिन आदि विद्वानों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। सामाजिक सम्बन्ध, सामाजिक संगठन, संरचना, प्रकार्य, अन्तर्क्रियाओं, सामाजिक व्यवहार तथा समाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक, भौतिक आदि क्षेत्रों में होने वाले किसी भी प्रकार के परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है।

जहाँ तक सामाजिक परिवर्तन लाने में धर्म की भूमिका का प्रश्न है तो इस संदर्भ में हम आर्य एवं आर्येतर के सम्पर्क, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, इस्लाम, ईसाईत तथा 19वीं शताब्दी में हुए सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक सुधार आन्दोलन को मान सकते हैं। जब भारतवर्ष में आर्य आए तो उनका सम्पर्क आर्येतर जातियों से हुआ। आर्य तथा आर्येतर संस्कृतियों के सम्पर्क के कारण भारतीय संस्कृति का बुनियादी धर्म बना। श्यामधर सिंह एवं अशोक कुमार सिंह का भी मानना है कि भारतीय संस्कृति में पहला धर्म आन्दोलन तब हुआ, जब आर्य भारतवर्ष में आये अथवा जब भारतवर्ष में उनका आर्येतर जातियों से सम्पर्क हुआ। आर्यों ने आर्येतर जातियों से मिलकर जिस समाज की रचना की, वहीं आर्यों अथवा हिन्दूओं का बुनियादी समाज हुआ और आर्य तथा आर्येतर संस्कृतियों के मिलने से जिस धर्म की सृष्टि हुई, वहीं भारतीय संस्कृति का बुनियादी धर्म बना। इस बुनियादी भारतीय धर्म के लगभग आधे उपकरण आर्यों के दिये हुए हैं और दूसरा आधार आर्येतर जातियों का अंशदान है। (सिंह, श्यामधर एवं सिंह, अशोक कुमार, 2009 : 276) साथ ही साथ वेद की रचना का श्रेय आर्यों को जाता है जो भारतीय जीवन की आत्मा मानी जाती है।

समाजिक परिवर्तन लाने में जैन और बौद्ध धर्म की अहम भूमिका रहा। जैनधर्म तथा बौद्धधर्म वैदिक धर्म के विरूद्ध विद्रोह किया और वैदिक धार्मिक क्रियाओं और व्यवहारों पर कठोरता से प्रहार किया। छठी शताब्दी ई0पू0 में हुई धार्मिक क्रांति का कोई एक विशिष्ठ कारण नहीं, वरन् विभिन्न कारणों से मिलकर विद्रोह का रूप धारण किया था। धार्मिक क्रांति के प्रमुख कारण इस प्रकार हम समझ सकते हैं। बहुदेववादका प्रचलन, ब्राह्मणों का नैतिक पतन, धार्मिक जटिलता, कठिन एवं खर्चीले यज्ञ, क्लिष्ट धार्मिक साहित्य, वर्ण व्यवस्था इत्यादि। उत्तर वैदिक काल से वर्ण व्यवस्था जटील होती चली गई। वर्ण का निर्णय कर्म के आधार पर न होकर जन्म के आधार पर होने लगी। ब्राह्मण एवं क्षत्रिय सुविधाभोगी वर्ग और विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग बन गए। एक के हाथ में राज सत्ता थी, तो दूसरे के हाथ में राजनीतिक सत्ता। वैश्यों की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी सबसे बुरी अवस्था तो शूद्रों की थी, जिन्हें तीनों वर्ण की सेवा करनी पड़ती थी। ब्राह्मणों और क्षत्रियों के आपसी संबंध भी बहुत अच्छे नहीं थे। क्षत्रिय इस बात से असंतुष्ट थे कि शासन का प्रधान होने के बावजूद उनका दर्जा ब्राह्मणों से नीचा था। धार्मिक जीवन आंडम्बर पूर्ण एवं यज्ञ और बलि प्रधान बन चुका था। नए धर्मों के उदय का वास्तविक कारण उत्तर–पूर्वी भारत में प्रकट हुई नई कृषि व्यवस्था में निहित थी। कहने का तात्पर्य यह है कि जैन और बौद्ध धर्म का उदय और विकास होने से भारतीय समाज और संस्कृति में अनुकुलशील परिवर्तन हुए। इन नए सम्प्रदायों ने वेदवाद का विरोध किया, ब्राह्मणों की प्रभुसता की चुनौती दी, जाति प्रथा पर प्रहार किया तथा अहिंसा पर बल दिया। वैदिक धर्म की कुरितियों पर आघात करते हुए नए धर्मों को सबके लिए सहज और ग्राह बनाया।

जैन धर्म ईश्वर की सृष्टि के रचियता एवं पालनकर्त्ता के रूप में स्वीकार नहीं करता है। यह आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करता है। यह धर्म न केवल मनुष्यों व जानवरों बल्कि प्रत्येक जीव में आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करता है। कर्म का पुनर्जन्म के साथ सीधा सम्बन्ध है। कर्मों के आधार पर ही अगला जन्म होता है। मोक्ष प्राप्ति के लिए कठोर तप पर बल दिया गया। अहिंसा पर बल देते हुए, समानता व सदाचार पर बल दिया गया है। निर्बाण प्राप्त करने का प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है चाहे वह शूद्र हो अथवा ब्राह्मण। महावीर ने नारियों के सम्मान देने पर भी बल दिया।

जैन धर्म वह धर्म है जिसमें वैदिक धर्म के विरोधी बीज अन्तर्विष्ट थे। इस धर्म ने मनुष्य के मस्तिष्क के अनेक बन्द दरवाजों को खोल दिया और ऐसे अनेक प्रश्नों को वैदिक आचार्यों के सामने रखा जिनकी हल्की–पतली झाँकी वेदों में यद्यपि प्रच्छन्न अवश्य थी किन्तु वेदकालीन मनुष्य इन प्रश्नों के चंगुल में नहीं

* एसोशिएट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची

फँसा था। जैन धर्म ने मनुष्य को कुरेद–कुरेद कर, उसे प्रश्नों का उत्तर ढूढ़ने के लिए विवश कर दिया, जिनका अन्तिम जवाब उसे आज तक नहीं मिला। (सिंह, श्यामाधर एवं सिंह, अशोक कुमार, 2009 : 447)

महात्मा बुद्ध का विचार था कि सांसारिक विषयों में लिप्त रहकर भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। उन्होंने सदाचार जीवन, कर्म और पुनर्जन्म में विश्वास करते थे। आश्चर्य की बात है कि यद्यपि महात्मा बुद्ध आत्मा को नहीं मानते थे किन्तु पुनर्जन्म को मानते थे। उन्होंने भी वेदों में अविश्वास तथा जाति प्रथा का विरोध किया। निर्वाण प्राप्ति के लिए यज्ञ या बलि की आवश्यकता नहीं वे समानता पर बल दिए। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि निर्वाण मृत्यु के उपरान्त नहीं, वरन इसी जन्म में प्राप्त किया जा सकता है। इतना अवश्य है कि उन्होंने सामाजिक समानता, लिंग समानता पर बल दिया है। हालाकि बौद्ध के विचारों का अवलोकन करते हैं तो पाते हैं कि उन्होंने इस धर्म के माध्यम से समाज में सामाजिक परिवर्तन लाने का प्रयास किया, लेकिन उनका सिद्धांत कहीं–कहीं विरोधाभास के रूप में देखने को मिलता है। बी.डी. महाजन का मानना है कि बुद्ध ने स्वयं भी ब्राह्मणों को बहुत महत्त्व दिया है। 'ललित–विस्तार' में लिखा है कि ''बुद्ध केवल ब्राह्मण या क्षत्रिय के घर जन्म ले सकता है, चाण्डाल, शूद्र या अन्य निम्न कोटि की जाति में वह जन्म नहीं ले सकता।'' मल्ल–वंश के एक व्यक्ति का आनन्द ने सत्कार किया था और स्वयं बुद्ध उसके घर गया था, ''इसलिए कि वह विशेष और प्रसिद्ध व्यक्ति था।'' कुछ ऐसे प्रमाण मिलते हैं, जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि यदि कोई व्यक्ति ब्राह्मण होता था तो उसे बुद्ध से मिलने की छुट होती थी। बुद्ध ने 'जटिल' ब्राह्मण सन्यासियों के लिए बौद्ध–धर्म में प्रवेश के नियमों की अड़चन नहीं रखी थी क्योंकि वे आध्यात्मिक दृष्टि से ऊँचे थे। इसी प्रकार बुद्ध ने ब्राह्मणों के निमन्त्रणों को भी स्वीकार किया। किन्तु इसमें बुद्ध का विचार उन्हें अपने धर्म में लाने का न था। कुछ समय पश्चात् अशोक ने भी अपने आदेशों में लिखा है कि ब्राह्मणों को उचित आदर अवश्य मिलना चाहिए। (महाजन, वी.डी., 2001 : 178)

भारत में इस्लाम का आगमन आठवीं शती से माना जाता है, जब सिंध पर अरब का विजय प्राप्त हुआ। जहाँ एक ओर मुस्लिम संस्कृति ने हिन्दू संस्कृति को प्रभावित किया, वहीं दूसरी ओर मुस्लिम संस्कृति खुद हिन्दू संस्कृति से प्रभावित हुई। मुस्लिम शासकों में सिर्फ अकबर ने दीए–ए–इलाही'' नाम सम्प्रदाय अथवा धार्मिक मत के माध्यम से भारतीय समाज एवं संस्कृति में परिवर्तन लाने का प्रयास किया। उन्होंने हिन्दुओं पर लगने वाले जजिया कर को समाप्त किया।

अकबर ने दीन–ए–इलाही नामक एक नए संश्लिष्ट सम्प्रदाय की स्थापना के माध्यम से यह प्रयास किया, जिसमें इस्लाम, जैन धर्म, हिन्दू धर्म एवं पारसी धर्म का मिश्रण था। दारा शिकोह ने उपनिषदों के एकेश्वरवाद की इस्लाम के साथ समन्वय की हिमायत की तथा इन दोनों परम्पराओं में समानताओं पर जोर दिया। साहित्यिक हस्तियों में, अमीर खुसरों ने हिन्दू धर्म की अंतःजनित परम्परा की मुस्लिम जगत के लिए व्याख्या का बहुत कार्य किया। सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दियों में अनेक मुस्लिम कवियों तथा लेखकों ने हिन्दी में लिखना पसंद किया। इनके प्रतिनिधियों के रूप में जायसी, नबी, काज़ी मोहम्मद बाहरी, शेख दान्याल चिश्ती, शेख अब्दुल कुआद्दस गंगोही, अब्दुल रहीम खान–ए–खाना का नाम लिया जा सकता है। फारसी भाषा के कवियों में फैज़ी तथा उर्फी इस प्रकार के समागमी सांस्कृतिक आह्वान से प्रभावित थे। (सिंह, योगेन्द्र, 2008 : 127)

19वीं शताब्दी में सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक सुधार आन्दोलन हुए। इन सुधार आन्दोलनों में ब्रह्य समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, प्रार्थना समाज, थियोसिफिकल सोसाइटी आदि प्रमुख है। ब्रह्म समाज में वेदों और उपनिषदों को आधार मानकर बताया गया है कि ईश्वर एक है, सभी धर्मों में सत्यता है। मुर्तिपूजा और कर्मकाण्ड निरर्थक है तथा सामाजिक कुरितियों का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। 1829 में अंग्रेज प्रशासकों तथा राजाराम मोहन राय के प्रयास 1829 में सती निरोध अधिनियम बना। उन्होंने बहुविवाह समाप्त करने, विधवाओं की दशा सुधारने, वेश्यावृति को समाप्त करने, स्त्रियों की शिक्षा दिलाने तथा उन्हें संपति के अधिकार दिलवाने का प्रयास किया। वे छुआ–छूत और जाति प्रथा को भी समाप्त करना चाहते थे। उन्होंने अंतर्जातीय विवाह का समर्थन किया। शिक्षा तथा साहित्य के क्षेत्र में भी उनकी अहम भूमिका रही। प्रार्थना समाज की स्थापना ब्रह्य समाज की एक शाखा के रूप में न्यायाधीश महादेव गोविन्द रानाडे के नेतृत्व में 1867 में हुई। प्रार्थना समाज के मुख्य सिद्धांत ईश्वर एक है और उसने विश्व को रचा है, सभी मनुष्य ईश्वर की सन्तान है, मुर्ति पूजा ईश्वर की सच्ची उपासना नहीं। प्रार्थना समाज का मुख्य उद्देश्य एकेश्वरवाद को प्रश्रय देना। धर्म की कुरीतियों, रूढ़ियों और पुरोहितों के आधिपत्य से मुक्त कराना था। उन्होंने जाति व्यवस्था, अस्पृश्यता की निंदा की तथा अंतजार्तीय विवाहों को प्रोत्साहित किया। विधवा विवाह को जायज ठहराया, स्त्री–शिक्षा, दलितों, अछूतों और श्रमिकों के हितों की रक्षा करने की वकालत की। आर्य समाज की स्थापना 1875 में स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा किया गया। वे वेदों की सर्वोच्चता, पुनर्जन्म और कर्म के

सिद्धान्त में विश्वास रखते थे। पुराणों में उनकी आस्था नहीं थे। इसकी उन्होंनें तीव्र भर्त्सना की। उन्होंने जाति व्यवस्था की संकीर्णता को दूर करने का प्रयास किया। सभी वर्णों के समान अवसर प्रदान करने और स्त्रियों की दशा सुधारने की कोशिश की। बाल विवाह तथा बहु–विवाह जैसे कुप्रथाओं के विरूद्ध आंदोलन प्रारम्भ किया। शुद्धीकरण की विधि के द्वारा धर्म परिवर्तित हिन्दुओं, गैर हिन्दुओं, दलितों, अछूतों के पुनः हिन्दु धर्म और समाज का अंग के रूप में स्वीकार किया गया। इसी प्रकार रामकृष्ण मिशन के जन्मदाता रामकृष्ण परमहंस थे, उनकी आस्था सभी धर्मों में बराबर थी, उनका मानना था कि ईश्वर एक है लेकिन उसके रूप अनेक हैं। वीरेन्द्र प्रकाश शर्मा का मानना है कि विवेकानन्द के नेतृत्व में स्थापित रामकृष्ण मिशन बिना किसी भेदभाव के आज भी समाज सेवा में संलग्न हैं। विवेकानन्द ने मानव–समाज की सेवा को महत्त्वपूर्ण माना। वे स्त्री पुररुद्धार और आर्थिक प्रगति के भी पक्षधर थे। उन्होंने निर्धनता, अशिक्षा, रूढ़िवादिता व अन्धविश्वास आदि की भर्त्सना की। उन्होंने मानव–कल्याण में सहायक धर्म के स्वरूप को प्रस्तुत किया। उन्होंने धार्मिकता उदारता, समानता और सहयोग पर बल दिया। उनके उपदेशों के परिणामस्वरूप भारतीयों की शारीरिक एवं मानसिक प्रगति हुई। वे नारी–शिक्षा के उन्नयन के प्रबंल समर्थक थे। सारांशतः उन्होंने राष्ट्रीय, भारतीय सभ्यता और संस्कृति पर बल दिया। (शर्मा, वीरेन्द्र प्रकाश, 2001 : 457)

भारत में ईसाईत के आगमन से भारतीय समाज के निम्न वर्गों तथा विशेष कर जनजातियों में अनुकूलनशील परिवर्तन हुए हैं, भले ही उसका उद्देश्य धर्म परिवर्तन का रहा हो। ईसाई धर्म एकेश्वरवाद, आत्मा की पवित्रता, ईसाई मसीह में विश्वास, चर्च की सत्ता, सामनता तथा भ्रातृव पर बल देता है। यह धर्म मूर्ति–पूजा का विरोधी है। निम्न जातियों एवं विशेष कर जनजातियों के लिए शैक्षणिक, स्वास्थ्य एवं आर्थिक सहायता ईसाई मिशनरियों ने प्रदान किया। ईसाई मिशनरियों में गोस्सनर इबेनजलेकिल लुथेरचन चर्च मिशन, एस0पी0जी0 मिशन, रोमन कैथोलिक मिशन आदि प्रमुख हैं। यह धर्म समानता पर आधारित होने के कारण भारतीय समाज के निम्न जातियों की सामाजिक स्थिति को ऊँचा उठाने में अहम भूमिका निभाया। इस धर्म के प्रभाव के कारण भारतीय समाज के स्त्रियों की स्थिति में अनुकुलनशील परिवर्तन हुए, साथ साथ भाग्य वादिता, अंधविश्वास में कुछ हद तक कमी आई, शिशु हत्या, मानव–बलि, अस्पृश्यता, बहुपत्नी विवाह पर भी रोक लगने लगे। वैवाहिक मान्यताओं में भी अनुकूलनशील परिवर्तन हुए साथ ही साथ ही रहन–सहन, वेशभूषा, खान–पान आदि में भी परिवर्तन हुए।

समाजशास्त्रियों में विशेष कर जेम्स फ्रेजर, अगस्त कौंत तथा मैक्स वेबर ने यह विचार व्यक्त किया कि धर्म सामाजिक परिवर्तन लाने का मुख्य अभिप्रेरक है। जेम्स फ्रेजर का मानना था कि आदिम मुनष्यों में जादू का विकास सम्भवतः पहले हुआ, उसके बाद धर्म और अन्ततः विज्ञान का। एन. मजुमदार एवं टी.एन. मदन का मानना है कि आदिम मनुष्य ने जीवन की वास्तविकतओं का सामना करने के लिए कतिपय उच्च शक्ति या शक्तियों में अपने विश्वास की सहायता ली होगी – या तो ऐसी शक्ति को दबाव द्वारा अपनी सेवा में लगाकर, अर्थात् जादू से, या इसकी पूजा–आराधना करके, अर्थात् धार्मिक उपागम से। जादू और धर्म दोनों अनुकुलन के उपकरण है, और इन दोनों का अभीष्ट कठिन स्थितियों में मनुष्य की सहायता करना और तनाबों से उसे बचाना होता है। ऐसा लगता है कि ये दोनों उपागम सदैव साथ–साथ प्रचलित रहे है। कभी–कभी ये दोनों काफी समान एवं परस्पर एकाकार प्रतीत होते है। तथापि, ऐसा विश्वास किया जाता है कि जादुई उपागम अधिक आदिम हैं। मनुष्य ने अनुनय – विनय का तरीका तभी अख्तियार किया होगा जब उसके अहं से चालित जादुई उपागम वांछित परिणाम अनिवार्यतः पैदा करने में असफल रहा होगा। (मजुमदार, डी.एन. एवं मदन, टी.एन., 2002 : 139)

उपर्युक्त विचार से यह बात स्पष्ट हो जाता है कि आदिम मनुष्यों ने अपने विभिन्न समस्याओं, कठिनायों एवं वास्तविकताओं का सामना करने के लिए पहले वह जादू का सहारा लिया, जब वह अपनी विभिन्न समस्याओं, कठिनाईयों एवं वास्तविकताओं का हल जब जादू से नहीं कर पाया, तो वह धर्म का सहारा लिया। जब उनकी समस्याएँ, कठिनाईयाँ एवं वास्तविकताएँ का हल धर्म के माध्यम से भी संभव नहीं हो पाया तो मानव ने अन्ततः विज्ञान का सहारा लिया।

फ्रेजर का कहना है कि जादू और विज्ञान आधारतः एक है। दोनों में अंतर इतना ही है कि इनमें से जादू कारण और कार्य संबंधी गलत धारणाओं पर आधारित होता है। इसलिए वे जादू को विज्ञान की अवैध बहिन (वास्टर्ड सिस्टर) कहते है। (मजुमदार, डी.एन. एवं मदन, टी.एन., 2002 : 142)

अगस्त कौंत का मानना था कि मानव का बौद्धिक विकास तीन चरणों से गुजरता है। जैसे जैसे मानव समाज एक चरण से दूसरे चरण में प्रवेश करता है, वैसे–वैसे समाज में जटिलता बढ़ती है। धर्म शास्त्रीय स्तर में मानव प्रत्येक घटना के पीछे अलौकिक शक्ति को मानता था। कौंत ने धार्मिक स्तर को तीन उप–स्तरों की व्याख्या की है। (क) जीवित सत्तावाद में मानव प्रत्येक वस्तु में जीव में जीवन की कल्पना की,

चाहे वह सजीव हो या निर्जीव, (ख) बहुदेववाद में विभिन्न देवी–देवता की कल्पना की गई। (ग) एकेश्वरवाद में मानव एक ईश्वर में विश्वास करना प्रारम्भ किया। तात्विक स्तर में मानव के तर्क–क्षमता में वृद्धि हुई। प्रत्येक घटना के पीछे अर्मूत शक्ति को स्वीकार किया गया और अन्त में प्रत्यक्षवादी स्तर में मानव ने घटना का विश्लेषण निरीक्षण, परीक्षण, अवलोकन के आधार पर करने लगा। इस अवस्था में मानवता का धर्म एवं प्रजातंत्र का विकास हुआ। वर्तमान हमारा समाज इस स्तर पर है।

मैक्सवेबर ने यह विचार व्यक्त किया प्रोटेस्टेट धर्म के कारण पश्चिम में पूँजीवाद का विकास हुआ है। प्रोटेस्टेण्ट धर्म और पूँजीवाद के उक्त सम्बन्ध को प्रमाणित करने के लिए वेबर ने इन दोनों के 'आदर्श–प्रारूपों' को चुना। उन्होंने तुलनात्मक पद्धति को अपनाते हुए का एक आदर्श प्रारूप तैयार करके विश्व के धर्मों की व्याख्या किया। मैक्स वेबर ने विश्व के छह प्रमुख धर्मों को अपने अध्ययन का आधार बनाया। वे धर्म हैं – कन्फ्यूनिशयन, हिन्दू, बौद्ध, ईसाई, इस्लाम तथा यहूदी धर्म। इस्लाम धर्म की चर्चा उन्होंने आरंभ किया परन्तु इसे आंशिक रूप से ही कर सके। पूँजीवाद के विकास में प्रोटेस्टेंट धर्म इसलिए सहायक कारक रहा क्योंकि यह धर्म कठोर परिश्रम, व्यवसायिक सफलता से स्वर्ग की प्राप्ति पर बल देता है, इसका संबंध उस विश्वास से है जिसे कैलविनवाद कहा जाता है। यदि कोई व्यक्ति अपने कार्य या व्यवसाय में सफलता प्राप्त करता है तो, उसकी आत्मा स्वर्ग में जाएगी। निर्वाण अथवा मोक्ष प्राप्ति, चर्च और तीर्थ यात्रा द्वारा संभव नहीं है, बल्कि व्यवसायिक कार्य कुशलता पर निर्भर है। साथ ही साथ पैसा कमाता है, एक पैसा बचाना, एक पैसा कमाने के समान है मादक वस्तुओं के प्रयोग पर निषेध तथा कर्म ही पूजा पर बल दिया गया है।

इस प्रकार वेबर ने पूँजीवाद तथा प्रोटेस्टेण्ट आचारों के बीच सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए अनेक ऐतिहासिक प्रमाणों को प्रस्तुत किया है। आपने यह दर्शाया है कि पूँजीवाद का सर्वोत्तम विकास इंगलैण्ड, अमेरिका, हालैंड आदि उन देशों में हुआ है। जहाँ लोग प्रोटेस्टेण्ट धर्म के अनुयायी हैं। इसके विपरीत, इटली, स्पेन आदि देशों के लोग कैथोलिक धर्म के अनुयायी होने के कारण पूँजीवाद को अधिक विकसित नहीं कर पाए हैं (मुकर्जी, रवीन्द्र नाथ, 2003 : 294)।

हिन्दू धर्म में पूनर्जन्म, कर्म का सिद्धांत जाति व्यवस्था तथा आध्यात्मिकता आधुनिक पूँजीवाद को लाने में सबसे बड़ा बाधक रहा। चीन में नातेदारी के बंधन थे ये वरिष्ठ जनों द्वारा चलाए जाते थे जो पारंपरिक थे। उद्योग सीमित हो गया था। चीन की भाषा भूक्तिपूर्ण सोच में बाधक थी। चीन में कन्फूशियस धर्म आदि ने उस मानसिकता को विकसित नहीं होने दिया जो पूँजी वाद के लिए जरूरी था।

उपर्युक्त विभिन्न विवेचनाओं से यह बात स्पष्ट हो जाता है कि समाजिक परिवर्तन लाने में धर्म की अहम भूमिका होती है। बौद्ध, जैन तथाा ईसाई धर्म की भूमिका को नाकारा नहीं सकता साथ ही साथ 19वीं शताब्दी में समाजिक सुधारकों की अहम भूमिका रही है। जेम्स फ्रेजर, अगस्त कौंत ने सामाजिक परिर्वतन लाने में धर्म की महता को दर्शया है। साथ ही साथ मैक्सबेबर ने भी अपने अध्ययनों में इस बात की पुष्टि की है। हालांकि मैक्सवेवर ने धर्म संबंधी सिद्धांत को काफी वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है, लेकिन वर्तमान समय में उनके सिद्धान्त की काफी आलोचनाएँ की गई है। भारतीय जाति व्यवस्था इतनी जटिल है कि आनुभाविक आधार पर यह खरा नहीं उतरता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. सिंह, श्यामधर एवं सिंह, अशोक कुमार (2009) : 'धर्म का समाजशास्त्र', सपना अशोक प्रकाशन, वाराणसी
2. वही, पृ. 447
3. महाजन, वी.डी. (2001) : 'प्राचीन भारत का इतिहास'. एस0 चन्द्र एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली
4. सिंह, योगेन्द्र (अनुवादक–अरबिन्द कुमार अग्रवाल) (2008). 'भारतीय परम्परा का आधुनिकीकरण'. रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर
5. शर्मा, वीरेन्द्र प्रकाश (2001) : 'भारतीय सामाजिक व्यवस्था', पंचशील प्रकाशन, जयपुर
6. मजुमदार, डी.एन. एवं मदन, टी.एन. (2002) : 'सामाजिक मानवशास्त्र', मयूर पेपर बैक्स, नौएडा
7. वही, पृ. 142
8. मुकर्जी, रवीन्द्र नाथ. (2003) : 'सामाजिक विचारधारा', विवेक प्रकाशन, दिल्ली

●